ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-7* September- 2020
Innovation The Research Concept

भारत में संतुलित क्षेत्रीय विकास के मुद्दे : एक अध्ययन

Issues For Balanced Regional Development In India: A Study

Paper Submission: 15/09/2020, Date of Acceptance: 25/09/2020, Date of Publication: 26/09/2020

राकेश कुमार
पूर्व शोध छात्र,
अर्थशास्त्र विभाग,
बी.आर.ए. बिहार
विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर,
बिहार, भारत

सारांश

भारत जैसे संघीय राज्य के समन्वित विकास के लिए संतुलित क्षेत्रीय विकास अनिवार्य है। किन्तु भारत में क्षेत्रीय भिन्नता की एक चरम तस्वीर दिखायी देती है यदि हम आर्थिक विकास के ऐसे सूचकों अर्थात् प्रति व्यक्ति आय, गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या, कृषि में कार्यरत जनसंख्या, कृषि में कार्यरत जनसंख्या, विनिर्माण उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों आदि के आधार पर अध्ययन करें। सापेक्ष रूप में, कुछ राज्य आर्थिक दृष्टि से अग्रगामी है और अन्य सापेक्षतः पिछड़े हुए हैं। प्रत्येक राज्य में भी कुछ क्षेत्र अधिक विकसित हैं जबकि अन्य लगभग आदिम युग में हैं।

Balanced regional development is essential for the coordinated development of a federal state like India. But in India, an extreme picture of regional variation is visible if we look at such indicators of economic growth ie per capita income, population living below poverty line, population working in agriculture, population working in agriculture, laborers working in manufacturing industries etc. Study on the basis of Relatively, some states are economically advanced and others are relatively backward. Some regions are also more developed in each state while others are almost primitive.

मुख्य शब्द : क्षेत्रीय भिन्नता, आर्थिक विकास, क्षेत्रीय असंतुलन, आर्थिक पिछड़ापन, ग्राम–बेरोजगार, कुटीर उद्योग।

Regional Variation, Economic Development, Regional Imbalance, Economic Backwardness, Village-Unemployed, Cottage Industries.

प्रस्तावना

सापेक्षतः विकसित और आर्थिक दृष्टि से दबे हुए राज्यों का सह–अस्तित्व और प्रत्येक राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की दृष्टि से भिन्नता को ही क्षेत्रीय असंतुलन कहते हैं। क्षेत्रीय असंतुलन का कारण प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि में अन्तर हो सकता है या यह मनुष्यकृत कारणों का परिणाम भी है जिसके आधीन कुछ क्षेत्रों को निवेश एवं विकास प्रयास में अन्य क्षेत्रों अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। क्षेत्रीय असंतुलन अन्तःराज्यीय हो सकते है और राज्य–अन्तर भी, वे कुल रूप में भी हो सकती हैं और विभिन्न क्षेत्रों में भी। किसी क्षेत्र के आर्थिक पिछड़ेपन के कई सूचक हो सकते हैं जैसे जनसंख्या का भूमि पर अत्यधिक दबाव, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता जिसके परिणामस्वरूप ग्राम–बेरोजगारी का अधिक विद्यमान होना, कृषि तथा कुटीर उद्योगों में निम्न उत्पादिता आदि।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इस तथ्य को रेखांकित करना है कि सरकार ने विकेन्द्रीकरण और पिछड़ें क्षेत्रों के विकास का प्रयास तो किया और इस प्रकार राऊरकेला, भिलाई, बरौनी आदि में सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश को बढ़ाया किन्तु इन क्षेत्रों में अनुषंगी उद्योगों के तेजीं से न बढ़ने के परिणामस्वरूप ये इलाके केन्द्र के भारी निवेश के बावजूद पिछड़े ही रहे।

क्षेत्रीय असंतुलन के सूचक

क्षेत्रीय असंतुलन का अध्ययन करने के लिए भारत के 15 बड़े राज्य दो वर्गों में बांटे गए हैंः अग्रगामी राज्य और पिछड़े राज्य। अग्रगामी राज्यों में शामिल हैंः पंजाब, गुजरात, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडू और आंध्र प्रदेश। हमने पश्चिम बंगाल को अग्रगामी राज्यों के समूह में इसलिए शामिल किया है क्योंकि पश्चिम बंगाल की प्रति व्यक्ति आय कर्नाटक और केरल से

अधिक हैं और साक्षरता (पुरूष एवं स्त्री दोनों), शिशु मृत्युदर, मृत्युदर और जन्मदर में इसका रिकार्ड कई अन्य राज्यों से बेहतर है जो इस वर्ग में शामिल किए जाते हैं। पश्चिम बंगाल के शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद की वृद्धिदर केरल, तामिलनाडू और कर्नाटक से अधिक है। ये सभी कारणतत्व पश्चिम बंगाल को अग्रगामी राज्यों की श्रेणी में शामिल करने के लिए न्यायोचित माने जा सकते हैं।[1]

पिछड़े राज्यों में हैं मध्य प्रदेश, असम, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा और बिहार। इन 15 राज्यों में 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 90 प्रतिशत निवास करता है– 48 प्रतिशत अग्रगामी राज्यों में और 42 प्रतिशत पिछड़े राज्यों में।

क्षेत्रीय असमानता के सूचक के रूप में प्रति व्यक्ति शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद

1993–1994 में कीमतों पर प्रति व्यक्ति शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद के आंकड़ें प्रस्तुत किए गये हैं। आंकड़ों से पता चलता है कि 1990–1991 में, पंजाब की अधिकतम प्रति व्यक्ति आय और बिहार की न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय का अनुपात 2.74 था। यह अनुपात बढ़कर 2002–2003 में 3.8 प्रतिशत हो गया। सुधार प्रक्रिया ने क्षेत्रीय असमानताओं को बढ़ा दिया है क्योंकि इनके दौरान अग्रगामी या सामेक्षतः अधिक विकसित राज्यों को अधिक प्रोत्साहन मिला।[2]

हमने अपने उद्देश्य के लिए राज्यों को प्रति व्यक्ति शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद अर्थात् आय के आधार पर अग्रगामी राज्यों और पिछड़ें राज्यों में विभक्त किया है। 1990–1991 में पंजाब प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से सबसे उच्च स्थान पर था जबकि उड़ीसा सबसे नीचे था, किन्तु 2002–2003 में, महाराष्ट्र सर्वोच्च स्थान पर पहुंच गया और बिहार प्रति व्यक्ति आय के आधार पर सबसे नीचे था।

शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद की वृद्धिदर

अग्रगामी राज्यों में वर्ष 1990–1991 और 2004–2005 के बीच शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद में 6.03 प्रतिशत की दर से वृद्धि दर्ज की गई, जबकि पिछड़े राज्यों में यह वृद्धि दर मात्र 2.69 प्रतिशत वार्षिक ही रही। इस अन्तर के कारण आर्थिक सुधारों के पश्चात् क्षेत्रीय असमानताएं पहले से ज्यादा बढ़ गई। अग्रगामी प्रान्तों जैसे पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और गुजरात में शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद में भारी वृद्धि (6 प्रतिशत से अधिक) रही, जबकि पिछड़े राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार (जहां अधिक जनसंख्या है) में इन 14 वर्षों में बहुत नीची आर्थिक संवृद्धि की दर रही। सबसे बुरी बात यह रही कि बिहार के शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद में ऋणात्मक संवृद्धि दर (–.99 प्रतिशत) दर्ज हुई जबकि उत्तर प्रदेश जिसकी जनसंख्या 16.6 करोड़ है और जो भारत की कुल जनसंख्या का 16.2 प्रतिशत है, में आर्थिक संवृद्धि की दर मात्र 2.79 प्रतिशत ही रही।[3]

मध्य प्रदेश में स्थिति इससे भी अधिक बुरी रही, और वहां शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद में मात्र 1.78 प्रतिशत की ही संवृद्धि दर रही। इसका अभिप्राय यह है कि पिछड़े राज्यों, जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश, जहां अत्याधिक जनसंखया है, के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया पर बुरा असर पड़ा। उड़ीसा और राजस्थान में आर्थिक संवृद्धि की दर क्रमशः 5.52 प्रतिशत और 5.11 प्रतिशत रही। हालांकि यह संवृद्धि दर भी काफी कम है लेकिन इन 14 वर्षों में इन 2 राज्यों ने अन्य पिछड़े राज्यों के अपेक्षा बेहतर काम किया। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कुछ अग्रगामी राज्यों जैसे पंजाब और हरियाणा की आर्थिक संवृद्धि की दर पहले से कम हुई और वे अन्य अग्रगामी राज्यों से पीछे रह गये, जबकि 1980–1981 और 1990–1991 के कालखण्ड में वे तेजी से प्रगति कर रहें थे।

आर्थिक सुधारों से पूर्व 1980–1981 और 1990–1991 के दशक में अग्रगामी राज्यों में शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 5.2 प्रतिशत थी, जो सुधारों के बाद 1990–91 से 2004–05 के कालखण्ड से बढ़कर 6. 03 प्रतिशत हो गई। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि 2013–14 के बाद पिछड़े राज्यों की परिस्थिति में बदलाव आया है। उदाहरण के लिये राजस्थान में 2004–05 और 2013–14 के बीच के कालखंड में आर्थिक संवृद्धि की दर बढ़कर 7.3 प्रतिशत तक पहुंच गई। इसी कालखंड में यह संवृद्धि दर उड़ीसा में 5.7 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 8.6 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 6.8 प्रतिशत रही। 2005 के बाद बिहार में भी प्रगति के चिन्ह् दिखाई देते हैं, और वर्ष 2004–05 और 2013–14 के बीच बिहार की संवृद्धि दर 9.5 प्रतिशत तक पहुंच गई। लेकिन यह बात भी सत्य है कि बिहार की प्रतिव्यक्ति आय अभी भी देश में सबसे कम है। उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, असम, मध्य प्रदेश और नये राज्य झारखण्ड में प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से 25 से 40 प्रतिशत कम है। यह चिंता का विषय है। क्षेत्रीय असमानताओं मे कमी, पिछड़े राज्यों में जीवन स्तर के सुधार के लिये तो आवश्यक है ही साथ ही देश के तेजी से सर्वागीन विकास के लिये भी यह आवश्यक है। देश के विकास में हमारी अपार जनशक्ति विशेष तौर पर युवाओं के योगदान का महत्त्व सर्व विदित ही है। यदि कुछ राज्य पिछड़ें रहते हैं तो उन राज्यों में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य नागरिक सुविधाओं का भी विकास नहीं हो पाता है। इन राज्यों में आधारभूत संरचना का भी विकास अवरूद्ध होता है। हम देखते हैं कि इन राज्यों में शैक्षिक विकास सूचकांक भी नीचा रहता है। सबसे पिछड़ा राज्य बिहार शैक्षिक विकास में भी सबसे नीचे 35वें स्थान पर है। झारक्षंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उड़ीसा क्रमशः 34वें, 31वें, 29वें और 28वें स्थान पर हैं। राजस्थान में आर्थिक संवृद्धि में सुधार वहां के शैक्षिक विकास में परिलक्षित हो रहा है और वह शैक्षिक विकास सूचकांक की दृष्टि से 19वें स्थान पर पहुंच गया है। पश्चिम बंगाल हालांकि अग्रगामी राज्यों की श्रेणी में आता है, फिर भी वह शैक्षिक विकास की दृष्टि से मध्य प्रदेश से भी पीछे 32वें स्थान पर हैं।

आयोजन प्रक्रिया ने पिछड़े राज्यों की सहायता करके क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने का प्रयास किया किन्तु उदारीकरण और वैश्वीकरण की शक्तियों ने अग्रगामी राज्यों में पिछड़े राज्यों की तुलना में निवेश को बढ़ावा दे कर क्षेत्रीय असमानताओं को और बढ़ा दिया।[4]

विभिन्न राज्यों में राज्यीय देशी–उत्पाद की वृद्धि दरें

भारत के मुख्य राज्यों के राज्यीय देशीय उत्पाद की वृद्धिदरों सम्बन्धी आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं योजना के बारे में सूचना दी गयी है। आंकड़ों को दो वर्गों में बांटा गया है– अग्रगामी राज्य और पिछड़े राज्य। आंकड़ों से पता चलता है कि गुजरात ने ग्यारवीं योजना के दौरान 9.6 प्रतिशत की उच्चतम वृद्धि दर दर्ज की, उसके बाद हैं तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोवा, हरियाणा, केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश जो सभी 7.9 प्रतिशत की अखिल भारतीय औसत के ऊपर थे। तीन योजनाओं में, पंजाब में वृद्धिदर सापेक्षतः 4.4 प्रतिशत से 6.8 प्रतिशत की बीच रहीं जो कि अत्यन्त निराशाजनक है क्योंकि साठ और सत्तर के दशक में पंजाब को वृद्धिदर की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। पश्चिम बंगाल में भी वृद्धिदर राष्ट्रीय औसत से नीची ही रही हैं।

पिछड़े हुए राज्यों अर्थात् झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में वृद्धिदरों में उन्नति हुई है। राजस्थान जिसने आठवीं योजना के दौरान 7.5 प्रतिशत की सुदृढ़ वृद्धिदर दर्ज की, वह भी दसवीं योजना में मन्द होकर 5.0 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गया है। उत्तर प्रदेश अभी भी वृद्धि दर की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इस बात की सख्त जरुरत है कि पिछड़े राज्यों में विकास–दर को त्वरित किया जाए ताकि क्षेत्रीय असमानता कम की जा सके।[5]

निवेश एवं वित्तीय सहायता की प्रवृत्तियाँ

योजना आयोग के डा. जे.जे. कुरियन ने भारत में बढ़ती हुई क्षेत्रीय असमानताओं का विस्तृत अध्ययन किया है। उनका मत है कि निवेश–प्रस्तावों के दो–तिहाई से अधिक भाग (69.2 प्रतिशत) का सुधार–उपरान्त काल में संकेन्द्रण अग्रगामी राज्यों में हुआ और ऐसी ही परिस्थिति अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों एवं राज्यीय वित्तीय निगमों द्वारा विस्तृत वित्तीय सहायता के बारे में विद्यमान थी। अखिल–भारतीय वित्तीय संस्थानों अर्थात् भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, आई.सी.आई.सी.आई. भारतीय इकाई नियास, भारतीय जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने 31 मार्च 1997 तक वित्तीय सहायता का 67.3 प्रतिशत अग्रगामी राज्यों में वितरित किया। 9 अग्रगामी राज्यों में से भी चार राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडू और आंध्र प्रदेश ने कुल सहायता का 51 प्रतिशत हथिया लिया। राज्यीय वित्तीय निगमों ने भी वित्तीय सहायता का 70 प्रतिशत अग्रगामी राज्यों को ही दिया। इस विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है कि सुधार–प्रक्रिया ने निवेश–प्रस्तावों की स्वीकृतियों एवं वित्तीय सहायता में अग्रगामी राज्यों को प्राथमिकता दी हैं। परिणामतः अग्रगामी राज्य जो पहले ही बेहतर स्थिति में हैं, अपनी विकास–प्रक्रिया को और त्वरित कर पाये हैं जबकि पिछड़े राज्यों जिन्हें अनुकूल व्यवहार प्राप्त नहीं हुआ, के विकास पर मन्द प्रभाव पड़ा हैं। इससे शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद–कुल एवं प्रति व्यक्ति दोनों–में बढ़ती हुई असमानताओं की व्याख्या हो जाती हैं।

आधारसंरचना सम्बन्धी असमानताएँ

आधारसंरचना सम्बन्धी असमानताएं भारत में प्रखर रूप में विद्यमान हैं। प्रति व्यक्ति पावर का उपभोग ऊर्जा के उपभोग–स्तर का सूचक है। इसके बारे में दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि केरल और पश्चिम बंगाल को छोड़ अन्य सभी अग्रगामी राज्य 2007–08 में देश की राष्ट्रीय औसत अर्थात् 509 कि.वा. घंटे से ऊपर है। इनके विरुद्ध पिछड़े हुए राज्य, विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार क्रमशः 145 कि.वा. घंटे और 194 किलोवाट घण्टे के उपभोग के कारण बहुत ही पीछे हैं। यह साफ जाहिर है कि जब तक इन राज्यों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज नहीं होती, इनमें असमानताएं बनी रहेंगी। सुधार–प्रक्रिया ने इस समस्या को केवल एक किनारे कर दिया है।[6]

प्रति 1,000 व्यक्तियों के लिए राज्यवार पंजीकृत गाड़ियों की संख्या एक महत्त्वपूर्ण सूचक हैं, चाहे यह परिवहन के विकास का व्यापक सूचक नहीं क्योंकि यह (1) रेलवे और (2) प्रति 100 किलोमिटर के लिए सड़क की लम्बाई जो कि परिवहन का एक मुख्य स्त्रोत है, को समाविष्ट नहीं करता। चाहे आधारसंरचना का विकास महत्त्वपूर्ण है परन्तु इसके प्रयोग की तीव्रता राज्य के शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय पर निर्भर करेगी। इस कारण कुछ विसंगतियों की व्याख्या करनी जरूरी है। उदाहरणार्थ, उड़ीसा के पास प्रति 1000 वर्ग. कि.मी. क्षेत्र के लिए 1383 कि.मी. लम्बाई की सड़कें उपलब्ध है परन्तु इसमें कुल एवं प्रति व्यक्ति राज्यीय घरेलू उत्पाद का स्तर बहुत नीचा होने के कारण इन सड़कों का अल्प–प्रयोग हो रहा है।

चाहे हम प्रति 1000 व्यक्तियों के लिए पंजीकृत गाड़ियों या टेलीकाम लाइनों का परीक्षण करें, परन्तु इनमें से कोई भी सूचक प्रयोग की तीव्रता का संकेतक नहीं हैं। उस सीमा तक, इन कसौटियों के उपयोग और विकास की दर में सम्बन्ध स्थापित करने में अपनी सीमाएं हैं। आधार संरचना विकास माँग–चालित बन सकता है जब इसके साथ प्रत्यक्ष रूप में उत्पादक क्रियाओं में निवेश होता रहे और यह संभरण–चालित हो सकता है जब इसके विकास से पहले प्रत्यक्ष रूपमें उत्पादक क्रियाओं में निवेश किया गया हो। मांग–चालित आधारसंरचना के विकास के परिणामस्वरूप थोड़े से समय के विलम्ब के बाद इसका बेहतर उपयोग होने लगता है परन्तु संभरण–चालित सामर्थ्य के विकास का प्रयोग काफी समय के विलम्ब के बाद होता है। दोनों ही दृष्टिकोणों को न्यायोचित समझने के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं।

तिस पर भी यह कहा जा सकता है कि आधारसंरचना का विकास किसी क्षेत्र के विकास की अनिवार्य शर्त तो है, चाहे यह इसकी पर्याप्त शर्त नहीं। इस बात का अर्थ पूरी तरह समझने के लिए सी.एम.आई.ई. के द्वारा प्रतिपादित आधार सूचकांक पर ध्यानपूर्वक विचार करना होगा। इस सूचकांक में जो मदें शामिल की गयी हैं, उनके महत्त्व ब्रैकिट में दिए गए हैं[7]:–

1. परिवहन सुविधाएं (26 प्रतिशत)
2. ऊर्जा उपभोग (24 प्रतिशत)
3. सिंचाई सुविधाएं (20 प्रतिशत)
4. बैंकिग सुविधाएं (12 प्रतिशत)
5. संचार (6 प्रतिशत)
6. शिक्षा सुविधाएं (6 प्रतिशत)

7. स्वास्थय सुविधाएं (6 प्रतिशत)

अखिल–भारतीय सूचकांक के मूल्य को 100 मानते हुए, वर्ष 1999 के लिए सभी राज्यों के लिए आधारसंरचना विकास के सूचकांक के सापेक्ष मूल्य कॉलम 6 में दिए गए हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि पंजाब का सापेक्ष सूचकांक 191.4 उच्चतम है, इसके बाद हैं तमिलनाडू और हरयाणा जिनके मूल्य क्रमशः 144.0 और 141.3 है। सबसे कम मूल्य मध्य प्रदेश का है (75.3), इसके ऊपर हैं असम (78.9) और बिहार (81.1)। चाहे उत्तर प्रदेश के सूचकांक का मूल्य 103,3, अखिल–भारतीय स्तर से ऊंचा है, फिर भी खाद्यान्न उत्पादन और गरीबी–उन्मूलन में यह कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडू से बहुत पीछे है जिनके आधार संरचना सूचकांक सापेक्षतः नीचे हैं।

जहां तक सिचाई–आधारसंरचना का सम्बन्ध है, पंजाब में कुल फसल–आधीन क्षेत्रफल के 94.8 प्रतिशत को सिंचाई सुविधाएं प्राप्त थीं और इसकी प्रति हैक्टेयर उत्पादिता अधिकतम थी, परन्तु उत्तर प्रदेश में जहां यह अनुपात 62.6 प्रतिशत के स्तर पर काफी ऊंचा था, फिर भी प्रति हैक्टेयर उत्पादित सापेक्षतः नीची थी। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जहां पंजाब और हरियाण, सिंचाई–आधारसंरचना का प्रयोग कृषि–विकास के लिए करने में सफल हो गए, उत्तर प्रदेश को इसमें पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई।[8]

सामाजिक आधारसंरचना और मानवीय विकास

मानवीय विकास के कुछ चुने हुए सूचकों अर्थात् जीवन–प्रत्याशा, साक्षरता दर, शिशु मृत्युदर, मृत्युदर और जन्मदर सम्बन्धी आंकड़ें दिए गए हैं। यदि सभी प्रकार के विकास का उद्देश्य जीवन की गुणवत्ता को उन्नत करना है, तो मानवीय विकास के सूचक विकास–प्रक्रिया के परणाम ही माने जा सकते हैं।

विभिन्न राज्यों में इनके सम्बन्ध में भारी असमान्ताएं पायी गयी हैं। केरल और कुछ हद तक तमिलनाडु ने यह प्रमाणित किया है कि मानवीय विकास के उच्च स्तर आर्थिक विकास के निम्न स्तर के बावजूद भी प्राप्त किए जा सकते हैं। परन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रति व्यक्ति आय के बेहतर स्तर के साथ मानवीय विकास के उच्च स्तर प्राप्त किए जा सकते हैं मानवीय विकास के उच्च स्तर प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी आधारसंरचना में निवेश को बढ़ाया जाए। पिछड़ें राज्यों में, बिहार, राजस्थान और उत्तर प्रदेश का साक्षरता, और विशेषकर स्त्री–साक्षरता में बहुत ही घटिया रिकार्ड है। वे स्वास्थ्य सम्बन्धी आधार संरचना में भी पर्याप्त निवेश नहीं कर पाये और परिणामतः इनमें निम्न जीवन प्रत्याशा, उच्च शिशु मृत्युदर और ऊंची जन्मदर पायी जाती है। निजी क्षेत्र जो आर्थिक सुधारों को मशाल–बरदार है, नर्सिंग होम स्थापित कर या उच्च वर्गों की शिक्षा के लिए शिक्षा संस्थान कायम तो कर सकता है जहां समृद्ध वर्ग या उच्च मध्य वर्ग अधिक फीस या खर्च देकर सुविधाएँ प्राप्त कर सकती हैं। परन्तु यह गरीबों के कल्याण के लिए कुछ भी सहायता नहीं करता था तो निजी क्षेत्र को उच्च सामाजिक उद्देश्य के लिए कार्यभाग अदा करना होगा या राज्य सरकार को शिक्षा और स्वास्थ्य में अधिक निवेश करना होगा।

जे.जे. कुरियन आर्थिक के आरम्भ के पश्चात् क्षेत्रीय असमानताओं का विस्तृत विश्लेषण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचता हैः

''1980 के दशक के आरम्भ के पश्चात् निजी क्षेत्र के सहयोग में वृद्धि के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असमानताएँ बढ़ी हैं। 1991 के पश्चात् चल रहे आर्थिक सुधारों जिनमें स्थिरीकरण और विनियमन प्रधान उपकरण हैं और जिनमे निजी क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण कार्यभाग दिया गया है, ने अन्ततः राज्यीय असमानताओं को और बढ़ा दिया है।'' उन्होंने इस सम्बन्ध में उल्लेख किया हैः ''समृद्ध राज्य अपनी विकास–सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए निजी निवेश, देशीय एवं विदेशी, की भारी मात्रा आकर्षित कर सके हैं कयोंकि इन में अनुकूल निवेश वातावरण जिसमें बेहतर समाजार्थिक आधारसंरचना भी शामिल है, विद्यमान है। पिछड़े राज्य निजी निवेश आकर्षित नहीं कर पाते क्योंकि इनमें प्रतिकूल निवेश वातावरण, जिसमें घटिया आधारसंरचना शामिल है, विद्यमान है। वे अपने निवेश वातावरण को उन्नत करने के लिए वर्तमान आधारसंरचना सुविधाओं में सुधार नहीं कर पाते क्योंकि उनके पास संसाधनों का अभावा होता है। संसाधनों के अभाव के कारण उनमें विकास का स्तर नीचा रहता है। अतः इस प्रकार वे एक दुश्चक्र में ग्रस्त हो जाते हैं।''[9]

समग्र विश्लेषण का सार यह है कि आयोजन प्रक्रिया के दौरान चाहे क्षेत्रीय असमानताओं में कुछ वृद्धि हुई परन्तु फिर भी राज्य ने इन्हें कम करने का चेतन प्रयास किया। परन्तु सुधार प्रक्रिया जिसने वैश्वीकरण के साथ बाजार–शक्तियों को बढ़ावा दिया, से तो केवल अग्रगामी राज्यों का भला हुआ है और पिछड़ें राज्यों की उपेक्षा हुई है। इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई हैं।

आर्थिक पिछड़ेपन और क्षेत्रीय असंतुलन के कारण

कुछ ऐसे अवरोधक कारणतत्व होते हैं जो किसी क्षेत्र के तीव्र आर्थिक विकास में रूकावट बन जाते है; इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण हैः भौगोलिक अलगाव, परिवहन, श्रम, टेक्नोलॉजी आदि, आर्थिक ऊपरी व्ययों की अपर्याप्तता।

ऐतिहासिक दृष्टि से, पिछड़े हुए क्षेत्र भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा आरम्भ की गयी नीतियों का परिणाम हैं। ब्रिटिश सरकार ने केवल उन क्षेत्रों के विकास में सहायता दी जिनमें विनिर्माण एवं व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं के लिए अच्छी सुविधाएं उपलब्ध थीं। ब्रिटिश उद्योगपतियों ने महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों को प्राथमिकता दी। तीन महानगरों– कोलकाता, मुम्बई, और चैन्नई– ने सभी उद्योगों को आकर्षित किया और बाकी देश की उपेक्षा की गयी और इसलिए वह पिछड़ा रहा।

इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश भू–प्रणाली के आधीन ग्राम क्षेत्रों का लगातार दरिद्रीकरण हुआ और किसान सबसे उत्पीड़ित वर्ग रहा और ग्राम क्षेत्रों में जमींदार और महाजन ही केवल वृद्ध व्यक्ति रह गए थे। प्रभावी भू–सुधार की अनुपस्थिति में, ग्रामीण भारत का आर्थिक ढांचा आर्थिक विकास के अनुकूल नहीं था। ब्रिटिश शासन

काल में कुछ क्षेत्रों में सिचाई में निवेश ने इन क्षेत्रों को समृद्ध बनने में सहायता दी।

विकासशील देशों में, विकसित क्षेत्र सामान्यतः शहरी केन्द्रों एवं शहरी क्षेत्र तक सीमित हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि विकसित देशों की अपेक्षा, विकासशील देशों में भौगोलिक कारण आर्थिक विकास को काफी हद तक नियंत्रित करते हैं। जापान और स्विटजरलैंड ने तो पहाड़ी इलाकों की कठिनाई पर नियंत्रण कर लिया है। परन्तु हमारे हिमालय के राज्यों अर्थात् उत्तरी कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार पहाड़ी जिलों और उत्तर–पूर्वीय सीमा क्षेत्र मुख्यतः पहुँच के अभाव के कारण पिछड़ें एवं अविकसित ही रहे हैं। जलवायु का भी भारत के बहुत से क्षेत्रों के निम्न आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण कार्यभाग रहा है और इनमें कृषि–उत्पादन कम रहा है और बड़े पैमाने के उद्योग कायम ही नहीं हो सके।

कुछ क्षेत्रों को कुछ स्थिति सम्बन्धी लाभों के कारण तरजीह दी जाती है। लौह तथा इस्पात के कारण या तेल–परिष्करणशालाएं केवल उन्हीं इलाकों में कायम की जाती हैं जहां ये खनिज पाए जाते हैं। स्वाभाविकतः जैसे विकास की प्रक्रिया गति प्राप्त करती है, तो इन क्षेत्रों में बाह्म मितव्ययताएं उपलब्ध होने के कारण, ये श्रम, पूंजी एवं व्यापार को आकर्षित कर लेते हैं।

नये निवेश की विशेषकर निजी क्षेत्र में, पहले से विकसित क्षेत्र की ओर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है और इस प्रकार यह बाह्म मितव्ययताओं का लाभ उठा सकता है। ऐसा करना निजी क्षेत्र की दृष्टि से स्वाभाविक है क्योंकि अच्छी तरह विकसित क्षेत्र निजी निवेशकों को कुछ बुनियादी लाभ अर्थात् प्रशिक्षित श्रम, आधारसंरचना सुविधाएं, परिवहन और बाजार, उपलब्ध कराता हैं।[10]

1950–51 के पश्चात् आयोजित आर्थिक विकास की अवधि के दौरान गम्भीर क्षेत्रीय असंतुलन उत्पन्न हो गए। चाहे संतुलित विकास का 1956 की औद्योगिक नीति में पुरजोर समर्थन किया गया और दूसरी योजना के पश्चात् इस आर्थिक आयोजन के प्रमुख उद्देश्यों में से एक उद्देश्य माना गया, परन्तु हमारे आयोजकों एवं लाइसेंस प्रदान करने वाले प्राधिकारों ने इसकी पूर्णतया अवहेलना की।

सच तो यह है कि आयोजन–प्रक्रिया ने स्वयं राज्यों के बीच असमानताओं को बढ़ावा दिया है और विकसित राज्यों को अधिक सहयाता प्रदान की है और कम–विकसित राज्यों की उपेक्षा की है। वास्तव में, पांच राज्यों अर्थात् पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक एवं हरियाणा को सभी योजनाओं में अधिक प्रति व्यक्ति योजना परिव्यय उपलब्ध कराया गया। परनतु गरीब राज्यों अर्थात् बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान को प्रति व्यक्ति बहुत ही कम योजना–परिव्यय प्राप्त हुआ। परिणामतः राज्यों के बीच असमानताएं बढ़ती गयीं।

1951 के पश्चात ''कुशलता की कसौटी'' के आधार पर भारी मात्रा में निवेश कुछ ही केन्द्रों जैसे मुम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर, कोलकाता, बंगलौर आदि में संकेन्द्रित हो गया। ये क्षेत्र अपनी सामर्थ्य से अधिक विकिसत किए गए और इसके परिणामस्वरुप इनमें जनसंख्या का अत्यधिक दबाव, गन्दी बस्तियों का विस्तार, परिवहन, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि की समस्याएँ गंभीर रूप धारण कर गयी हैं। इस कारण ये क्षेत्र आस–पास के इलाकों से दिमाग और संसाधनों को अपनी ओर खींचने में सफल हो गए हैं। इन केन्द्रों को चूषण–पम्प की संज्ञा दी गयी है क्योंकि ये अपने विकास के लिए पड़ोसी क्षेत्रों से लोगों, पूंजी एंव अन्य साधनों का उत्प्रवाह कराने में सफल हो जाते हैं।

1960 के दशक के पश्चात् कृषि में नयी टेक्नोलॉजी के अपनाने से भी क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओं में वृद्धि हुई है। दुर्लभ संसाधनों को सबसे अधिक उत्पादक क्षेत्रों में प्रयुक्त करने की मान्यता के आधार पर और खाद्याान्न अभाव की समस्या के समाधान के लिए खाद्यान्न–उत्पाद को अधिकाधिक बढ़ाने के लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए, सरकार ने देश के उन क्षेत्रों में संसाधन–निवेश की ठानी जिनमें सिंचाई सुविधाएं बहुत विकसित थी। इन इलाकों के किसान तो पहले ही सम्पन्न थे और वे और अधिक सम्पन्न हो गए। इसके विरूद्ध, खुश्क–क्षेत्रों के किसान और ग्रामों में रहने वाली फार्म–भिन्न जनसंख्या उपेक्षित रही। इसके परिणामस्वरूप, सिंचाई–आधीन क्षेत्रों और खुश्क क्षेत्रों और बड़ें किसानों और छोटे किसानों के बीच प्रत्येक राज्य में असमानताएं और भी बढ़ गयीं।[11]

निष्कर्ष

सरकार ने विकेन्द्रीकरण और पिछड़ें क्षेत्रों के विकास का प्रयास तो किया और इस प्रकार राऊरकेला, भिलाई, बरौनी आदि में सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश को बढ़ाया किन्तु इन क्षेत्रों में अनुषंगी उद्योगों के तेजीं से न बढ़ने के परिणामस्वरूप ये इलाके केन्द्र के भारी निवेश के बावजूद पिछड़े ही रहे।

जबकि कुछ राज्यों ने अपने क्षेत्रों के औद्योगिक विकास की ओर अधिक ध्यान दिया– जैसे पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडू इसके उदाहरण हैं, वहां अन्य राज्य राजनीतिक साजिशों और जोड़–तोड़ में वयस्त रहे और अपने राज्यों के संतुलित एवं त्वरित आर्थिक विकास की उपेक्षा करते रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रुद्र दत्त एड के.पी.एम. सुन्दरम, इंडियन इकोनॉमी, एस. चाँद, दिल्ली, पृ. 496–505.*
2. *टी.आर. जैन, इकोनॉमिक डेवलपमेंट एंड पॉलिसी इन इंडिया, वी.के. पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2013, पृ. 13–17.*
3. *उपरोक्त, पृ. 18.*
4. *आई.सी. डिंगरा, इकोनॉमिक डिवलपमेंट एंड पॉलिसी इन इंडिया, एस. चाँद, एकेडमिक फाउंडेशन, न्यू दिल्ली, 2009, पृ. 76–77.*
5. *रुद्रदत्त एंड के.पी. एम. सुन्दरम, पूर्वोक्त.*
6. *उपरोक्त.*
7. *उमा कपिला, इंडियन इकोनॉमी : इशूज इन डिवलपमेंट प्लानिंग, एकेडमिक फाउंडेशन, न्यू दिल्ली, 2009, पृ. 76–77.*
8. *उपरोक्त, पृ. 78.*
9. *आई.सी. डिंगरा, पूर्वोक्त, पृ. 24–25.*
10. *उपरोक्त.*
11. *टी.आर. जैन, पूर्वोक्त, पृ. 19–20.*